सती-चित्रावली



सोल एजेन्ट —

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरीसन रोड, कलकत्ता,

सिविल होस्पिटल रोड, दहली,

बुलानाला, काशी

उर्दू बजार गोरखपुर

दाम दो रुपया चार आना।

प्रकाशक
श्रीआशुतोष धर,
आशुतोष लाइब्रेरी
न० ३९।१ कालेज ष्ट्रीट,
कलकत्ता।
१३३०

श्रीनारसिंह प्रेसे
श्रीप्रभातचन्द्र दत्त द्वारा मुद्रित
३९।१ कालेज ष्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रेमोपहार

मेरा

श्री ——————————

करकमलोंमें—

यह चित्र-पुष्प सती अलौकिक वास सावित्री लता।
बस स्वर्ग व अपवर्ग का है एकमात्र यही पता॥
यह इन्दु भारत जीवनी सञ्जीवनी गत प्राण है।
नरलोक का उत्थान है, परलोक का सोपान है॥
नर धन्य हैं, मतिमन्य हैं, कर्मण्य हैं आदर्श हैं।
जिस के सुखद जीवन प्रभाका यह सती आदर्श है॥
हो अन दृढ व्रत जो इसे पालन करें शुचि नेमसे।
उस आर्य रमणी करकमल में है समर्पित प्रेमसे॥

श्री ——————————



आशीर्वाद

दक्ष प्रजापति की छोटी लडकी सती अपने मा बाप की बडी प्यारी थी। सती बचपन से ही सारे गुणों से युक्त थी। साथ साथ अपने मा बाप के प्रति वह असीम भक्ति तथा श्रद्धा रखती थी। उसके पिता दक्ष और मा प्रसूतिने सती को बडे चावसे नाना शास्त्र तथा पुराणों की शिक्षा दी। उन शास्त्रों में शिवजीका माहात्म्य सुनकर बचनपन ही से सती को शिवजीके प्रति असीम भक्ति होने लगी। किन्तु उसके मा बापको इसकी कुछ खबर ही नहीं कि सती कैसे शिवजीकी भक्त हो चली।

सती ज्यों ज्यों बढने लगी त्यों त्यों शिवजीका दर्शन क्योंकर मिलेगा इस हेतु व्याकुल होने लगी। दक्ष पुरी के सुन्दर-देव-मन्दिर में वह व्याकुल चित्त होकर प्रतिदिन शिवजीकी आराधना करती थी। एक दिन की बात है। ज्योंही पूजार्चना समाप्त कर वह मन्दिरसे बाहर निकली त्योंही क्या देखती है कि सामने एक योगिन खडी है। सतीके प्रणाम करने पर वह योगिन आशीष देकर बोली "देवादिदेव तेरी मनकामना पूरी करें" यह कह कर वह योगिन अन्तर्ध्यान होगई।



Bhakta RASPUTANA.

शिव-दर्शन

दूसरे दिन सन्ध्या समय सती रुद्रपुरी के पास के एक छोटे पर्वत पर बैठी हुई शिवजीके ध्यान में मग्न थी। पूर्णचन्द्र की स्वच्छ किरणें चारों दिशाओं को आलोकित करती हुई समीप के छोटे झरने में प्रतिविम्बित होती थीं। सती अञ्जलि भर फूल लेकर अपने इष्ट प्रियतम के चरणों में अर्घरूप से अर्पण कर रही थी। एकाएक देवदेव महादेवजी अपनी शुभ्र कान्तिसे पूर्णचन्द्र की उन किरणों को भी मलिन करते हुए अपने भक्त की पूजा ग्रहण करने के लिये सतीके सामने खड़े हो गये। सती अपने मनोरथ प्रियतम देवको अपने निकट देखकर आनन्द से फूली न समाई। ढेर के ढेर फूल लेकर उनके चरणकमलों की पूजा करने लगीं। उस पूजार्चना के साथ साथ वह अपना तन मन भी शिव के चरणों में अर्पण कर गई। प्रेममय महादेवजीने भी हसते हसते अपनी भक्ति करनेवाली के मनोपहार को भी सादर स्वीकार कर लिया।



कैलास-यात्रा

एक शुभ दिन में पितामह ब्रह्माजी के सामने देवताओं का आशीर्वाद लेकर सतीने महादेवजी को पतिरूप में वरण कर स्वीकार कर लिया। शुभलग्न में ब्याह समाप्त होगया सही, किन्तु इस विवाह से उसके पिता दक्ष तथा माता प्रसूति खूब सन्तुष्ट न हुई। हाय! आखिर को मेरी रूप गुण तथा लावण्य की खान प्यारी बेटी श्मशानवासी भूत प्रेतो के साथी भिक्षुक के हाथों पडी! इस में दक्ष प्रजापति को बडी अप्रसन्नता हुई। किन्तु, खैर जो हो। महादेव जी को तो सभी देवगण देवोंके देव कहकर असीम भक्ति और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। अब दक्ष प्रजापति उनके श्वशुर हुए। शिवजी के श्वशुर होनेके कारण देवों की समाज में दक्ष की प्रतिष्ठा खूब ही बढ चली हो, इतनी ही भर तसल्ली थी।

ब्याह होजाने पर सती को बायीं ओर बैठाल कर और बूढे बैल पर असवार होकर सिंगा बजाते हुए नन्दी तथा भृङ्गीके साथ साथ शिवजी कैलास को चले।

सती अब श्मशानवासी भिक्षुक की गृहिणी हो चली।



शरीर-त्याग

भृगु मुनि के यज्ञ में शिवजीने अपने श्वशुर दक्ष का कुछ भी सम्मान नहीं किया। क्रोध और दुःख से अभिभूत होकर दक्षने इसका बदला लेनेके लिये एक बडा यज्ञ स्वयं करना शुरू किया। उस महा यज्ञ में स्वर्ग, मर्त्यलोक और पाताल के सभी को न्योता दिया गया। केवल शिवजी को निमन्त्रण न दिया गया। इस कार्य्यका भार नारद मुनि को दिया गया था। कलह प्रिय नारद मुनि को अच्छी बढिया मौका हाथ लगा। वह खासकर कैलास गये और नोन मिर्च लगी बातों से वहाँ कह आये कि दक्षने तीनो लोक में सभी को न्योता देने कहा है किन्तु केवल शिव और सतीजी को न्योता देनेका हुक्म खास कर के नहीं हुआ है।

क्या पति देवका अपमान। इतना अपमान।। हाय।।। यह मुझ से कैसे सहा जायगा? यह हृदय विदारक समाचार सतीजीके हृदय में शूल की तरह चुभा। उन्हो ने अपने पिताजी को शिव-रहित यज्ञ करने के भयङ्कर परिणाम को समझा देनेका दृढ सङ्कल्प किया। अपने तेज शक्ति स्वरूप दशमहाविद्या-ओंका रूप अपने स्वामी को दिखला कर बडे मुश्किल से पिताके यहाँ यज्ञके अवसर पर जाने की आज्ञा सतीने पाई। पिता को स्वामी का ऐश्वर्य्य दिखाने के लिये योगिन का रूप ग्रहण कर बेशकीमती गहने और कपडे पहन कर और नन्दी को साथ लेकर सती दक्षपुरी को गई। दक्ष ने सती को देखते ही शिवजी की अनेक प्रकार की निन्दा करना शुरू किया। सती अपने पिताजी को मङ्गलमय शिवजी की निन्दा करने से ज्यो ज्यो मनाही करती थी वह त्यो त्यो और अधिक निन्दा करते जाते थे। आखिरको पति-देव की निन्दा सतीजी को असह्य हुई। पति निन्दा सुनने से मेरा जीवन अपवित्र होगया ऐसा सोच कर सतीने उस यज्ञ भूमि ही में योगाभ्यास के बल से अपना प्राण त्याग दिया।

नन्दी कैलास को दौडा गया और शिवजी को उसने यह दुस्समाचार सुनाया।





शिवजी के कन्धे पर

शिवजी के कन्धे पर

सती के प्राण वियोग की खबर पाते ही शिवजी का शरीर काँपने लगा। उनके प्रचण्ड क्रोध से वीरभद्र नामक एक महा भैरव उत्पन्न हुए। वीरभद्र ने झट जाकर दक्षयज्ञ को तहस नहस कर डाला। दक्ष का सिर भी उनने काट डाला और उस धड़ के ऊपर छाग की मूडी रख दी।

इधर शिवजी सती के शोक से पागल होकर "सती दो, सती दो" यह कहते हुए दक्षपुर में जा उपस्थित हुए। बेचारी सती की देह पर बेशकीमती जेवरात और कपड़े देख कर पहले कुछ ठहर गये। किन्तु फिर तुरत सती के शरीर से उन वेश-भूषा की वस्तुओं को फेंक कर और तब उस मृतक शरीर को कन्धे पर रख कर उसके शोक से पागल होकर तीनों भुवन में घूमने लगे।

महादेव जी की यह हालत देख कर देवताओं को बड़ी चिन्ता हुई। बौड़ाहे शिव के कन्धे पर से सती को हटाने का कोई उपाय नहीं देखकर विष्णु भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा सती के शव को खण्ड खण्ड काटकर धीरे धीरे गिराना शुरू किया। उसी पवित्र शरीर का एक एक टुकड़ा भारतवर्ष के जिस जगह में गिरता गया वह स्थान पीठस्थान होकर हिन्दुओं के लिये महापीठ स्थान में परिणत होकर पूज्यस्थल होगया।



प्रथम-दर्शन

मद्रदेश के राजा अश्वपति तथा उन की रानी मालवी बहुत समय तक निस्सन्तान रही। पीछे अठारह वर्ष पर्य्यन्त सावित्री देवी की आराधना करने पर उन्हे एक कन्या हुई। देवी हीके नाम के ऊपरउसका नाम सावित्री रक्खा। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की नाई सावित्री दिनोदिन बढने लगी। उसके शरीर की अपूर्व कान्ति तथा अलौकिक ज्योति प्रशसनीय थी। उसके व्याह कराने की उमर होचली किन्तु अबतक कोई योग्य वर नही मिला। उसकी देह की दिव्य कान्ति औ तेज देखकर सभी व्याह करनेके इच्छुक राजकुमार लोग दूर ही से उसे भक्ति पूर्वक प्रणाम कर लौट जाते थे। कोई उन्हे पत्नी रूप से ग्रहण करने को स्वीकृत नहीं होता था।

अब राजा बडे मुश्किल मे पडे। अन्त मे माण्डव्य मुनिके उपदेशानुसार सावित्री को स्वय पति को चुन लाने को भेजा। सावित्री अपनी सखियोंके साथ रथ पर चढके अनेक जगहो में घूमती फिरती आखिरको एक तपोवन में पहुची। उस तपोवन मे शाल्य देश के राजा द्युमत्सेन रोग से अन्धे और शत्रुओं से आक्रान्त होने पर राज्यच्युत होकर अपने इकलौते बेटे सत्यवान तथा अपनी स्त्रीके साथ मामूली तौर से रहते थे।

सावित्री रथ को दूर ही से छोडकर उस तपोवन के लताकुञ्जो में अपनी सखी सहेलियो के साथ जब घूम रहीथी तभी अत्यन्त शुभ मुहूर्त्त में एकाएक सावित्री से सत्यवान की भेंट होगई।



नारदजी से भेंट

सावित्री सत्यवान के चरणों मे प्राण तथा मन को समर्पण कर राजधानी को लौट आई। अश्वपति सावित्री की सखियों के मुह से सत्यवान की बात सुनकर अत्यन्त हृष्ट हुए। जब कि तपोवन में द्युमत्सेन के पास आदमी भेजनेका उद्योग कर रहे थे इतने ही मे देवर्षि नारद अश्वपति के यहाँ आपहुँचे। राजाके सब वृत्तान्त सुनाने पर नारदजी बोले "निश्चय सभी तरह से सत्यवान सावित्री के योग्य वर है। किन्तु आज से बरस रोज पर उनकी मृत्यु निश्चित है। अतएव उन्हे कन्या कभी न देना"।

अश्वपति के हर्ष मे विषाद आघुसा। उन्हों ने अपनी लडकी को देवर्षि के सामने बुलाकर सब बाते कही। साथ साथ उसे अन्य पतिको वरण करने को कहा। यद्यपि सावित्री स्वभावत बडी लज्जाशीला थी किन्तु उस समय उससे नही रहा गया और वह बडे जोरदार शब्दो मे बोल उठी "मैं उन्हीं को स्वामीरूप से बरण कर चुकीहू। ऐसी हालत मे वह रोगी हो वा स्वस्थ, सुन्दर हो वा कुरूप, स्वल्पायु हों वा दीर्घायु—जैसे ही क्यों न हो—वही मेरे पतिदेव है। मैं कभी सत्यवान को छोड किसी दूसरे के साथ शादी नही कर सकती। किसी काम को करने के पहले लोग मन ही मे उसे निश्चय करते है, पीछे उसे बोलकर प्रकाश करते है और अन्त मे कार्य्य मे उसे परिणत करते है। अतएव मन ही सबों में प्रधान हुआ। मैंने भी जब मनही मन सत्यवान को स्वामी निश्चय कर लिया है तब केवल वही मेरे स्वामी हो सकते हैं। दूसरा और कोई भी नहीं हो सकता। देवर्षि नारद भी सावित्री की दृढता और धर्म्म परायणता देखकर उसी सत्यवान के साथ उसे ब्याहने की राय दे सावित्री को मन से आशीष देकर चलदिये।



विवाहोत्सव

देवर्षि नारद की अनुमति पाकर अश्वपति को तसल्ली मिली। उन
तुरत ही उस तपोवन में द्युमत्सेन के यहाँ विवाह का प्रस्ताव लेकर आ
भेजा। द्युमत्सेन प्रस्ताव को सुनकर फूले न समाये और उसे स्वीकार कि
इधर सत्यवान भी सावित्री के प्रथम दर्शन समय से उसी पर मोहित
सावित्री से ब्याह करने की लालसा से आज उनने इष्टदेव की भी प्रार्थना क

शुभ दिन मे राजा व रानीने पुरवासी नरनारियों को साथ लेकर
तपोवन मे जाकर बडी धूमधाम से सत्यवान के साथ अपनी लडकी का
सम्पन्न किया।



व्रतचारिणी

सावित्री ससुराल जाकर और तपस्विनी का भेष बनाकर बड़े
पूर्वक अपने ससुर सास तथा पति की सेवा करने लगी। उनकी सेवा
विद्या, बुद्धि तथा देवी की भाँति सादर आचरण से उनके गुरुजनों
तो दूर रही उस तपोवन भरके मुनि तथा मुनिपत्नियां तक उन्हें बड़े
दृष्टि से देखने लगीं।

सावित्री देवर्षि नारद की वह दारुण भविष्यद्वाणी क्षण भर के
नहीं भूलीं। किन्तु उसे अपने मन मे छिपा कर उनने पतिदेव क
कामना से प्रतिदिन व्रत, नियम तथा उपवासादि कर अत्यन्त व्याकु
ईश्वर से प्रार्थना करने लगीं।

अब वह भीषण दिन भी आ उपस्थित हो ही गया। उससे
पहले ही से सावित्रीने त्रिरात्र-व्रत नामक बड़ा कठोर व्रत प्रारम्भ किय



विधाता का लेख

आखिरको वह भयङ्कर दिन आ उपस्थित हुआ। सावित्री ने दिन
सत्यवान को अपनी आँखों के सामने रक्खा। किन्तु सन्ध्या समय उनने दे
कि पिता की आज्ञा से सत्यवान लकडी लाने को वन को चले है। सावि
का प्राण मारे डरके सूख गया। उनने साथ जानेको अपने पतिदेव की आ
मागी। किन्तु वह तीन दिनों से बिना कुछ अन्न जल खायें उपवास कर
थी। तब तक भी न कुछ खाया था और न एक बूंद जल तक पिया था। ऐ
हालत मे सत्यवान उसे अपने साथ वन जाने की आज्ञा क्योंकर देते? उन्हो
सावित्री को वापस करने के लिये लाख कोशिश की। किन्तु पतिव्रता शिरोम
सावित्री उस विधि लेख की बात जानती हुई कैसे उस समय में अपने पतिदेव
आँखों की ओट में रहने देती। उनने बडे मुश्किल से अपने ससुर और स
की अज्ञा ली। तब सत्यवान को अब किसी प्रकार की आपत्ति करने
मौका नहीं मिला।

दारुण भावीके प्रबल वेग से आकर्षित होकर सत्यवान वन को च
सावित्री भी मन का आतङ्क और व्याकुलता को छिपाकर छाया की नाई उ
पीछे पीछे चलीं।



यमराज से बातचीत

कर्म्म लेख की बात फलित हुई। लकड़ी काटते समय सावित्री के प्राण से भी प्यारे स्वामी ने प्राण छोड़ दिया।

अत्यन्त धार्म्मिक सत्यवानके प्राण को लेकर स्वय यमराज अपनी यमपुरी के रवाना हुए। सावित्री भी दिल में साहस करके उनके पीछे पीछे चलीं। कुछ दूर जानेपर यमराज ने देखा कि सावित्री उनके पीछे पीछे जा रही है। यमने जब सावित्री को वापस होने को कहा तब सावित्री उन्हें अनेक शास्त्र कथाएँ सुनाने लगीं। यमने सन्तुष्ट होकर सत्यवान के प्राण को छोड दूसरा कोई वरदान मागने कहा। सावित्री ने अपने अन्धे ससुर की आँख और खोया हुआ राज्य प्राप्त होना मागा। यमने 'तथास्तु' कहकर उन्हें वही वर दिया। सावित्री ने तिसपर भी यम का साथ नहीं छोडा। अनेक बातों से यम को मोहित कर क्रमश अश्वपति को सौ लडके तथा अपना पुत्र प्राप्त करने का वर मागा। अन्त मे बातों की चालाकी से यमराज के यहाँ से स्वामी तक को वह छुडा लाई।











राज्य-प्राप्ति

चिन्ता उस सौदागर की नाव मे बन्दी होकर भी अपने सतीत्व की रक्षा के लिये सूर्य्य भगवान से प्रार्थना करने लगी ताकि वह उसे बदसूरत औ व्याधियुक्त कर दे। सूर्य्य भगवान ने भी तभी उसकी प्रार्थना सुन ली। इधर श्रीवत्स चिन्ताके भुला जाने से बहुत जगहों मे खोजते और घूमते फिरते अन्तमे सौतिपुर नामक राज्य मे जाकर उपस्थित हुए। उस नगर के राजा की लड़की भद्रा ने स्वयम्वर सभा में गये हुए उस भिक्षुक वेषधारी श्रीवत्स के गले में जयमाला डाल दी। भद्राके पिता ने जब पीछे से श्रीवत्स को पहचाना तब अत्यन्त आदर सम्मान पूर्वक उन्हें ग्रहण किया।

इस तरह बारह बरस बीत गये। श्रीवत्स के प्रति अब शनिका क्रोध नहीं रहा। श्रीवत्स एक दिन नदी मे जब घूमने गये तब एक नाव में किसी स्त्री को "श्रीवत्स"। "श्रीवत्स"। कहकर चिल्लाती हुई सुन पाया। वह नाव तुरत पकड कर किनारे भगाई गई। श्रीवत्स ने तब उस नाव में उसी प्रियतमा चिन्ताको पाया। वह बदशकल और व्याधिग्रस्त थी और अपने स्वामीके विरह के कारण पगली हो चली थी। चिन्ता अपने प्रियतम को पाकर मूर्छित होगई। सूर्य्य की कृपा से चिन्ताने तब अपना पहले का स्वरूप पा लिया। श्रीवत्स फिर से अपने राज पर कब्ज़ा जमाकर एक शुभ दिन में चिन्ता और भद्रा के साथ सिंहासन पर बैठे। राज्यभर में फिर धन दौलत और शान्ति स्थापित हुई। लक्ष्मी उनके राज्य में अचल रूप से विराजने लगी।



क्वाँरी

श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा मानों प्रकृत की प्यारी लडकी थी। मामूली प्राकृतिक सौन्दर्य पर ही उस का हृदय मोहित हो जाता था। श्रीकृष्ण ने अपनी प्यारी बहन को अपने इच्छानुसार शिक्षा देकर उसे भोग विलाससे रहित और विमुख कर दिया।

एक दिन सूर्य्यास्त समय रैवतक पर्वत के नीचे खडी खडी क्वाँरी सुभद्रा गाढी नजर से समुद्र की शोभा देख रही थी। सिर पर नीला आकाश—पीछे मे मनहरण करनेवाला रैवतक पर्वत और सामने समुद्र मे सूर्य्यास्त की शोभा। वह किशोरी तन्मय होकर उस प्राकृतिक सौन्दर्य्य को देखने लगी।

इसी समय श्रीकृष्ण की स्त्री सत्यभामा आकर उनके पास मे खड़ी होगई और हँसकर बोली "ठहरो आज तुम्हारे भाई से कहूगी कि जल्दी से अपनी बहन की शादी करा दो। अन्यथा वह किसी दिन समुद्र मे कहीं डूब न मरे। सन्ध्या हो गई। अभी भी किसी फिक्र मे तुम तन्मय होरही हो।" यह कहकर और सुभद्रा को साथ लेकर वह घर चली गई। सत्यभामा सुभद्रा को बहुत प्यार करतीथी।



दर्शनाकांक्षिणी

आज द्वारकापुरीसे श्रीकृष्ण के प्यारे मित्र अर्जुन आवेंगे। सत्यभामाने न जाने क्यो सुभद्रा को अत्यन्त यत्नपूर्वक बडे चाव से सुमनोहर वेष मे सज-धज कर तैय्यार किया।

सरस वसन्त का समय था। उसी ऋतुराज के एकदिन सन्ध्या समय प्रमोद वन मे बैठकर सुभद्रा एकाग्रचित्त होकर माला गूथ रही थी। समीप के देवालय मे सुमधुर सन्ध्या समय का रागदार गाना होरहा था। इसी समय में श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लेकर रैवतक पर्वत की ओर उसी प्रमोद वन होकर जारहे थे। अर्जुन की नजर सुभद्रा पर पड़ी। अर्जुन उस कमनीय कान्ति को देखकर मोहित होगये। सुभद्रा भी अर्जुन को देखकर मुग्ध होगई। फिर देखने की इच्छा हुई। किन्तु इस वार मुह उठाते ही श्रीकृष्ण ने उसके मुह की तरफ देखा। सुभद्रा का मुह लज्जा के मारे सुर्ख (लाल) होगया। बहुत कोशिश करने पर भी फिर वह उस तरफ नहीं देख सकी। मन की इच्छा मन ही में रहगई। इधर अर्जुन अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्ण के साथ बातचीत करने के छल मे सुभद्रा को कुटिल कटाक्ष द्वारा देखने से बाज नहीं आये।

दूर मे खडी सत्यभामा देवी श्रीकृष्ण की ओर देखकर मुसकराने लगी।





शुभावलोकन

इधर सत्यमामाने सुभद्रा के यहाँ बातचीत के व्याज से अर्जुन का शूरत्व व ीरत्व का बखान करती हुई अर्जुन के प्रति सुमद्रा के हृदय मे एक प्रगाढ प्रेम उत्पन्न किया। उधर स्वय श्रीकृष्ण सुभद्रा के रूप गुणादि की सभी बातें अर्जुन को बातोंके प्रसङ्ग मे बखानने लगे जिस मे अर्जुन भी सुभद्रा के प्रति अत्यन्त प्रेम विह्वल होगये।

एकदिन सत्यभामा के आज्ञानुसार सखियों सुभद्रा को लेकर लताकुञ्ज में जाकर कृष्ण और बलराम की पूजा कराने लगीं। एकही आसन पर उन युगल मूर्त्तियों को रखकर ढेर के ढेर फूल और माला से उन्हें सजधज कर तैय्यार कर दिया। उसी समय अर्जुन सत्यभामा के पास श्रीकृष्ण की खोज करने के लिये आये। उस रहस्य को जाननेवाली सत्यभामा ने अर्जुन को उसी लताकुञ्ज की राह दिखला दी। अर्जुनने एकाएक उसी लताकुञ्ज में पैठकर सखी सहेलियों से वेष्टित सुभद्रा को पाया। वहाँ जाते ही भौचक्केसे होकर खड़े होगये। सुमद्रा भी ऐसे अवसर पर पहुँचे हुए उन्हे देखकर बड़ी लज्जा से उनकी तरफ देखने लगी। उनके हाथ के फूल नीचे जमीन पर गिर पडे। बस, इतने ही में सखियो ने मानों पहले स्थिर विचार से विवाह कालिक मङ्गलमय गीतादि गाना शुरू किया।

लज्जाके मारे मानो सुभद्रा मिट्टी में मिल गई। इसी शुभ अवसर पर सत्यभामा भी हँसती हँसती पहुँच गई और बोली "वाह! खूब हुआ है! शुभ दर्शन और वरणकरना ये दोनों कार्य साथ ही निपट गये। जाती जाओ यह खबर सभी को देदो।



सारथी अर्जुन

सारथी अर्जुन

सुभद्रा ने अर्जुन को मन और प्राण दोनों ही अर्पण कर दिये। सभी यदुवंशियों की इच्छा थी कि अर्जुन ही के साथ सुभद्रा का व्याह हो। किन्तु बलराम ने अपने प्यारे दुर्योधन को अपनी बहिन सुभद्रा को व्याह देने का विचार किया था।

तब श्रीकृष्ण की इच्छानुसार सत्यभामा ने अर्जुन के साथ परामर्श कर यह स्थिर किया कि पूजा के बहाने कल यदुवंशियों के साथ सुभद्रा रैवत वन के बाहर भेजी जाय और वहीं से अर्जुन उसे हरणकर ले जायँ।

पूर्व विचारानुसार कार्य्य सफलीभूत हुआ। अर्जुन ने जब देखा कि श्रीकृष्ण का रथ रैवतवन से बाहर हो निकला तब सुभद्रा को सखी सहेलियों के बीच से हरण कर ले भागे। यदुवंशियों की स्त्रियां चिल्लाने लगीं। रक्षकों ने रोका। यह खबर राजधानी में भी पहुँच गई। तब बलराम की भेजी हुई यादवों की सेना ने अर्जुन का पीछा किया।

दारुण सारथी रथ चलाने में बलराम क्रुद्ध हो जायँगे इस से रुक गया। अर्जुन ने उसे रथके डण्डे में बाध रक्खा। इसी बीच में सुभद्रा देवी ने घोड़ों का बागडोर लेकर बड़ी चतुरता से रथ चलाकर अर्जुन को भी मुग्ध कर डाला। यादवों की सेना हारकर लौट गई और उस अर्जुन के अद्भुत सारथी का वृत्तान्त सभी को कह सुनाया। बलराम ने भी जब ये सब बातें सुनीं तब वह भी इस विवाह से सहमत हुए और श्रीकृष्ण के साथ इन्द्रप्रस्थ को गये। वहीं यह शुभकार्य्य समाप्त हुआ।





दयावती

श्रीकृष्ण ने एक दफे अवन्तीपुरके राजा दण्डी की एक प्यारी लडकी को चालाकी से लेजाने की इच्छा की। दण्डीके प्राण से भी प्यारी अश्विनी को देना अस्वीकार करने के कारण श्रीकृष्ण ने उसके साथ लडाई करने का निश्चय किया। दण्डीराजने कृष्णके इस अत्याचार की बात सबों को कहकर उनसे सहायता मागी। किन्तु तीनो भुवन में कोई भी श्रीकृष्ण के विरुद्ध खडा होने में समर्थ नही हुआ। दण्डीराज ने तब अत्याचारी के हाथ मे अश्विनी देने की अपेक्षा प्राण त्यागना ही अच्छा समझा। तब वह श्रीगङ्गाजी में डूब मरने को चले। इसी समय अर्जुन की स्त्री सुभद्रा ने उन्हें देखा। दण्डी की सब बातें सुनकर अन्त मे सुभद्रा ने उन्हें शरण दी। पाण्डवो ने जब यह समाचार सुना तब वे बहुत डरे। भय इस बात का था कि उनलोगों के सदा के मित्र बन्धु श्रीकृष्ण के विरुद्ध उन्हें खडा होना पडेगा। साथ साथ मजा तो इस बात का था कि श्रीकृष्ण की प्यारी बहिन ही ने आश्रय दियाथा। किन्तु अन्याय के विरुद्ध में खडी होने में सुभद्रा की दृढ़ता और तेजस्विता देखकर पहले भीमसेन और पीछे सभी भाइयोंने सुभद्रा का पक्ष लिया।

श्रीकृष्णके साथ लडाई छिडी। युद्धक्षेत्र में आठ वज्रों के मेल होने पर दुर्वासा ऋषि के शाप से अश्विनी रूपी उर्वशी शाप से मुक्त हुई। अब युद्ध बन्द हुआ।

पाण्डवगण सुभद्रा के गौरव से गौरवान्वित हुए।



पुत्रदान

कुरुक्षेत्र के भीषण युद्ध मे सुभद्राका सब से पहला कर्त्तव्य थाँ कि शत्रु और मित्र मे भेद न कर जखमियो की सेवा शुश्रूषा करना।

दस दिन लड़ाई के बाद जब अर्जुन कहीं और जगह लड़ने में मशगूल थे तब द्रोणाचार्य्य के चक्रव्यूह को भेद करने का भार सुभद्राके इकलौते बेटे अभिमन्यु के ऊपर पड़ा। यही एक लड़का उनके नयनो का तारा था। अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा ने जब यह बात सुनी तब दुःख से बहुत कातर होने लगी। तब सुभद्रा ने अपनी पतोहू को अपने स्वामी से सुने हुए श्रीकृष्ण कथित गीताका निष्काम कर्म्मयोग की मधुर व्याख्या करना शुरू किया। अपनी सास की दृढ़ता और धर्म्मज्ञान के उच्च आदर्श की शिक्षा से मुग्ध होकर उत्तरा ने बहुत हृष्ट मन से स्वामी को केवल युद्धक्षेत्र में जाने की सलाह ही न दी वरन युद्ध की सामग्रिया तक ले आई। इधर सुभद्रा ने अपने प्यारे लड़के को वीर वेश में साजधज कर एकदम दृढ़चित्त होकर उसी वक्त उसे रणभूमि में भेजा।





गोद में मरा लड़का

सुभद्रा और अर्जुन के प्राणों के धन अभिमन्यु ने सात रथियों से वेष्टित होकर असीम वीरत्व प्रदर्शन कर सभी को चकित करके युद्धक्षेत्र में प्राण छोड़ा।

विजयी अर्जुन लौट आये। पाण्डवों के शिविर में एक गम्भीर शोक व्याप्त किये देखकर उन्होंने सभी से उसका कारण पूछा। किन्तु किसी को एक बात भी बोलने की हिम्मत न हुई। मलिन मुख तथा सिर झुकाये हुए वे लोग चुपचाप बैठे थ। इससे एक भयानक बुरी खबर की ध्वनि मालूम होती थी। उन्होंने श्रीकृष्ण से इसका कारण पूछा। श्रीकृष्ण ने किसी तौर का साफ जवाब नहीं दिया किन्तु अर्जुन के साथ कुरुक्षेत्र के एक बड़े पोतर में गये। वहाँ उनलोगोंने क्या देखा? देखा साक्षात् वीरता की मूर्ति-स्वरूप सुभद्रा को जो अविचलित हृदय में और सूखी आँखें किये अपने प्यारे पौत्र को मृतदेह को गोदी में लेकर बैठी है। साथ साथ अपने पति के पाँव के तले उत्तरा मूर्छित पडी थी। कृष्ण तथा अर्जुन को देखकर सुभद्राने धीरे धीरे अपने प्यारे अभिमन्यु को अपने भाई और स्वामी के पावों पर रक्खा।





लड़कपन में

कनौजके राजा जयचन्द्र और दिल्ली के सम्राट् पृथ्वीराज दोनों रिश्ते में मौसेरे भाई लगतेथे। इनके मातामह को दो कन्याएँ थीं। जयचन्द्र की कन्या सयुक्ता की अपेक्षा पृथ्वीराज चार बरस बडे थे। दोनों में बडा ही हेलमेल था। दोनो अधिकतर एकही जगह मे धूली मिट्टी का खेल खेलते थे। उनके नाना, जयचन्द्र जो बडे थे उनकी अपेक्षा पृथ्वीराज को जो छोटे थे, बहुत प्यार करते थे। अतएव उनने मरने के समय दिल्ली का सिहासन पृथ्वीराज को और कन्नौज का राजत्व जयचन्द्र को दिया। मातामह के इस तरह के पक्षपात की क्रिया को मन में रखकर और पृथ्वीराज से इसका पूरा बदला लेनेका निश्चय कर वह कन्नौज गये।

इधर सयुक्ता अपने पिता के साथ यद्यपि कन्नौज गई तोभी पृथ्वीराज को नहीं भूल सकी। उनके वीरत्वके कारण उनके गुणसमूहों के कारण सयुक्ता का बालिका-हृदय ही पृथ्वीराज के प्रति पूरी तौर से अनुरक्त था। आते वक्त सयुक्ता पृथ्वीराज का एक चित्र अपने साथ लाई थी। वह बालिका प्रतिदिन उसे स्वयं सौ बार देखती और सखियों को भी दिखाती थी। साथ साथ उनलोगोंके सामने पृथ्वीराज के गुण गाया करती थी।



प्रेम के रंग में

लड़कपन का स्नेह क्रमश यौवन मे प्रवल हो उठा। सयुक्ता उन्हे हृद
से प्यार करतीथी सही, किन्तु अब पृथ्वीराज का नाम लेने में उसे बडी लज
आती थी। अब फिर उस तरह दिल खोल कर सखियों के साथ पृथ्वीरा
की बात बोल नही सकती थी।

एक दिन सन्ध्या के समय सयुक्ता अकेली राजपुरी के देवमन्दिर के साम
की फूलवारी में एक पत्थर के खण्ड पर वैठी हुई एकाग्रचित्त से न जाने क
सोच रही थी। इसी समय सखियाँ आकर हसी दिलगी मचाने लग
और बोली "हमलोगों की सखी पृथ्वीराज के प्रेम मे एकाएक मग्न हो गई है
उधर पृथ्वीराज हमारे महाराज की 'दोनों आँखो का विष हो रहे हैं। उनक
नाम सुनते ही राजा तुरत आगवबूला हो जाते हैं। जाओ सखी! जाओ
किसुन जी को प्रणाम कर आओ। वह तुम्हारी मन कामना जरूर पू
करेंगे।" सयुक्ता लाज के मारे लाल हो गई।
पृथ्वीराज के प्रति जो पिता का भयङ्कर विद्वेष है वह मानों सयुक्ता के हृद
को जला रहा था।





स्वयम्बर सभा में

इसी बीच मे मुहम्मद गोरी को युद्ध मे हराने से पृथ्वीराज का यश दिगन्त-व्यापी होगया। किन्तु जयचन्द्र के हृदय मे ईर्ष्या का मानों तुपानल जलने लगा।

जयचन्द्र ने अब पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिये "राजचक्रवर्ती" होने की तैय्यारियां की और अपनी लड़की मे जो भाव (पृथ्वीराज के प्रति) था उसकी नेक भी परवा नहीं कर उसी दिन उसके स्वयम्बर होने की घोषणा की। सयुक्ता के रूप और गुण की ख्याति देशभर मे व्याप्त थी। सयुक्ता प्राप्त करने की आशा से नियत समय पर बहुत राजालोगोंने जयचन्द्र की अधीनता स्वीकार की। उधर जयचन्द्र ने पृथ्वीराज की एक मिट्टी की मूर्त्ति बनवाकर उसे द्वारपाल की तौर पर दरवाजे पर रखवाया।

किन्तु इसका विपरीत फल हुआ—सयुक्ताने सभी राजाओं की परवा न कर पृथ्वीराज की उस मिट्टी की मूर्त्ति के गले मे जयमाला पहनाई। ठीक उसी समय पृथ्वीराज आकर सभा में उपस्थित हुए। जयचन्द्र अपनी लडकी की धृष्टता पर और पृथ्वीराज के उस अवसर पर पहुँचजाने से अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए। तब उन्होने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। सयुक्ता अपने स्वामी के पास जाकर खड़ी हुई।

क्षणभर में ही जयचन्द्र को हराकर पृथ्वीराज सयुक्ता को लेकर दिल्ली चले गये।





पिता के शिविर में

दिल्ली मे बड़ी धूमधाम के साथ विवाहोत्सव ममाप्त हुआ। इसी बीच में मुहम्मद गोरी ने फिर दिल्ली पर आक्रमण किया। किन्तु इस बार भी वह पूरी तरह से पराजित हुआ और बन्दी होजाने पर पृथ्वीराज की कृपा से उसने छुटकारा पाया।

एक बरस बीता भी नहीं था कि इसी बीच मे महाराज जयचन्द्र ने कुछ दिल्ली सिंहासन की लालच से और कुछ अपनी कन्या के हरण का बदला लेने के ख्याल से मुहम्मद गोरी को भारतवर्ष मे बुला मगाया। इस दफे के दिल्ली के आक्रमण में गोरी को सहायता देने की उसने प्रतिज्ञा की। फिर फिर हराये जाने का बदला लेने के लिये गोरी भी इस दफे बडे समारोह से दिल्ली पर चढ आया।

संयुक्ता न पृथ्वीराज ने छद्मवेष में जयचन्द्र के खीमे मे पैठ कर इस आत्म-घाती घृणित सकल्प को छोड़ने के लिये उन्हे प्रार्थना की। किन्तु क्रोधके मारे अभागा जयचन्द्र ने एक भी नहीं सुनी। संयुक्ता बहुत रोई, बहुत मिनती की, किन्तु जयचन्द्र ने उन्हे उद्धत भाव से शिविर छोड़कर निकल जाने को कहा।

दिल्ली के सम्राट् ने चुपचाप यह अपमान सह लिया।





स्वामी को भेजने में

तिरौरी के युद्धक्षेत्र मे भीषण लडाई छिडी। पृथ्वीराज की योग्य रानी संयुक्ता अपने पिता को स्वजातिद्रोहिता के पथ से हटाने के लिये उनके समीप बहुत रोई, बहुत आरजू मिनती की थी सही, किन्तु जब लड़ाई शुरू हो ही गई तब वीर नारी सयुक्ता ने बड़ी धीरता व स्थिरता पूर्वक, अचल चित्त से स्वामी को युद्ध के वेष मे विभूषित कर उन्हें रणक्षेत्र में भेजा। स्वामी की इस युद्ध-यात्रा मे क्या परिणाम होगा इस डर से उसका कोमल हृदय कभी नहीं काँपा। स्वामी को मौत के मुह की ओर भेजते हुए भी उसका एक बूंद आसू भी नही गिरा।





रण में रंग करनेवाली

स्वजाति द्रोही जयचन्द्र की अभिलाषा पूर्ण हुई। बदला लेने का हौसला मिटगया। पृथ्वीराज ने आज युद्धक्षेत्र में प्राण तक दे दिया। किन्तु तोभी लडाई नहीं रुकी। पृथ्वीराज की सहधर्म्मिणी वीर रमणी सयुक्ता ने अपने प्यारे स्वामी के मरने पर रो रो कर अपने आँसुओं की धारा में पृथ्वी को नहीं डुबोया। वरन् स्वामी की अमर आत्मा की तृप्ति के लिये स्वय घोडे पर असवार होकर युद्ध स्थल में गई। पृथ्वीराज को बची बचाई सेना नये जोश मे आकर अपनी महारानी के पास आजमी। राजपूत रमणिया देश की विपत्ति के दिनों मे घरके कोने में छिपकर नहीं बैठ सकतीं, रो रो कर केवल अश्रु धारा नही बहातीं, बल्कि वे देश के लिये, स्वामी और पुत्रके सम्मान के लिये प्राण तक देने को उतारू होजाती है इसका ज्वलन्त दृष्टान्त सयुक्ता ने दिखला दिया।

सयुक्ता तब रण चण्डिका भगवती की तरह "हर, हर, महादेव" इन शब्दों से आकाश को गुञ्जायमान करती हुई और पृथ्वी को कँपाती हुई सैन्य दल पर टूट पडी। शत्रुदल हार कर भाग गया।

बाप बेटी की लडाई में बाप हारकर भाग गया।

साँझ के समय सयुक्ता विजयी सेना के साथ शिविर को लौटी।





सहमरण

सहमरण

जितनी देर तक लडाई के जोश मे सयुक्ता व्यापृत थी उतनी देर तक वह अपने प्यारे पति की भी सुधि भूल गई थी। किन्तु शिविर मे लौट आने पर जब उसने अपने पतिदेव के दिव्य शरीर को देखा तब उसका शोक सागर उमड़ पडा। आखिरको उसने पतिदेव के साथ सती होकर शरीर त्यागने का सकल्प किया। जिनके सम्मान की रक्षा के लिये हाथ मे तलवार लेकर युद्धक्षेत्र में टूट पड़ी थी अभी उन्हीं के साथ इस लोक को छोडने को उतारू हुई। राजोचित शय्या पर चिता बनाई गई। उस पर पृथ्वीराज का शरीर रक्खा गया। सती सयुक्ता उस शव के पाँव के तले जा पड़ी। वह बार बार अपने मरे स्वामी को आलिङ्गन और चुम्बन करने लगी। उनके दोनों पाँव छाती में लगालिये। चिता धक् धक् करती हुई जल उठी। सखिया रोने लगी। सयुक्ता सभी को तसल्ली की बातें कहकर उस अग्निकुण्ड में कूद पडी। इसके बाद सब खतम हुआ। पिता के वैरानल में कन्या ने आत्म आहुति दी।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

जयचद्र ने भारत में जो अग्नि प्रज्वलित किया उस में स्वय भी जल मरे सयुक्ता के सती होनेपर गोरी ने अनायास ही दिल्ली को दखल किया। इसके बाद उसने कन्नौज पर भी आक्रमण किया। जयचद्र पराजित हुए और आखिरको मारे भी गये। उन्होंने स्वजाति और स्वदेशद्रोहिता का फल हाथों हाथ पाया।

पृथ्वीराज और सयुक्ता के साथ साथ भारतवर्ष मे हिन्दू स्वाधीनता का दीप निर्वाण हुआ।



शेष





"यमदूता पलायन्ते सतीमालोक्य दूरत ।"

भारत रमणी का पतिही भूषण है ।
उनका सरवस पति सेवामे अर्पण है ।।
पति प्रेम आदर्श सती का है यह सीखो ।
हृदय पटल पर पति नारी का गुर यह लीखो ।।
गृह लक्ष्मीगण जिससे पतिव्रताहो ।
जगको जिस से सती जनोका भी परिचयहो ।।